मङ्गल प्रज्ञा

भाग: 2

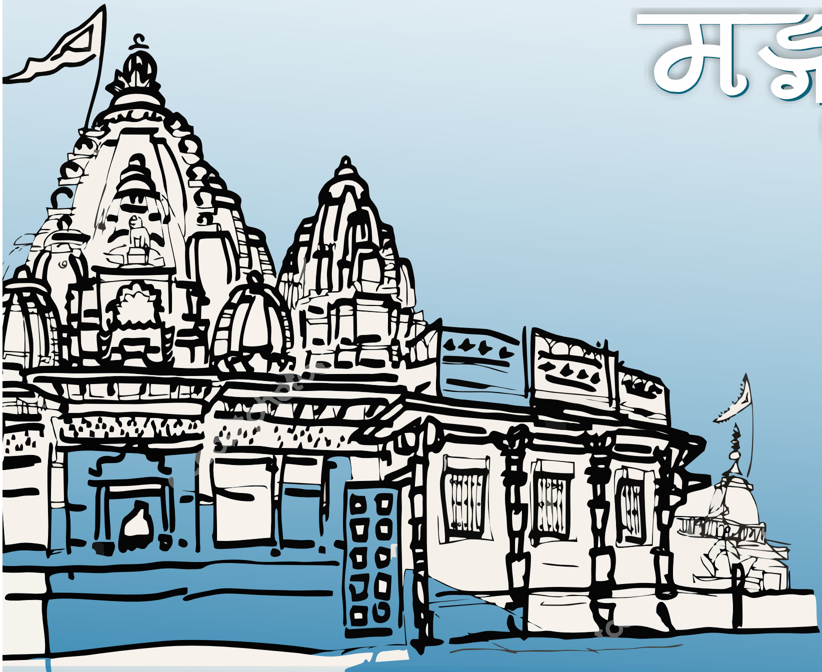

प्रकाशक:

मङ्गल विद्यापीठ

तीर्थधाम मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-२०४२१६ (अलीगढ़) उत्तरप्रदेश

॥ नमः श्री सिद्धेभ्यः ॥

मंगल प्रज्ञा

(द्वितीय भाग)

प्रकाशक :

मङ्गल विद्यापीठ

तीर्थधाम मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट

सासनी - 204216, हाथरस (उत्तरप्रदेश) भारत

mob. : 91-8191900042, e-mail : mangalvidyapeeth@gmail.com

हमारे जीवनशिल्पी
धर्मपिता
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
के कर-कमलों में
सविनय समर्पित!

हम हैं आपके,
नन्हें-मुन्नें ज्ञायक

प्रस्तावना

जैनदर्शन में तीर्थंकर, धर्म के संस्थापक नहीं होते, वे तो प्रवर्तक होते हैं, प्रचारक होते हैं।

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर, शासननायक भगवान महावीर तक यह प्रवाह निरंतर चलता रहा। महावीर भगवान के निर्वाण होने के पश्चात् कुछ केवलियों और श्रुतकेवलियों ने इसी शृंखला को आगे बढाया। विशेष ज्ञानियों का अभाव होने पर, मुनि परंपरा में यह विकल्प हुआ कि पंचम काल के अंतपर्यंत यदि जिनशासन को सुरक्षित करना है, तो सत्यमार्ग को जन-जन तक पहुँचाना होगा और इसके लिए जिनागम को लिपिबद्ध करना होगा। इसीलिए पुष्पदन्ताचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य आदि वीतरागी महर्षियों ने समय-समय पर वीतरागता के पोषक ग्रन्थों के लेखन का दुरूह कार्य किया।

काल के ओघ से जब यह वाणी, मंदबुद्धियों को समझने में दुर्गम हुई, तब उन ग्रन्थों की टीकाएँ लिखी गयीं। वीतरागी संतों का भी विरह-सा होता देखकर, कविवर पण्डित बनारसीदासजी, आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी जैसे समर्थ विद्वानों ने उन टीकाओं का सरलीकरण किया। इसे भी सरल-सुगम करने हेतु आज के परिप्रेक्ष्य में गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने सरलतम शब्दों में 45 वर्षों तक लगातार अमृतवर्षा की, जिससे प्रेरित होकर आज हजारों विद्वानों की सृष्टि हुई। हमारे ऊपर इन सबके अनंत उपकार हैं।

मङ्गल विद्यापीठ को यह विकल्प आया कि विद्वानों का योग सबको हो, यह जरूरी नहीं है। आज विषयों की अन्धी भाग-दौड़ के इस काल में समय की अनुकूलता मिलना दुर्लभ है। बीमारी आदि से ग्रस्त होने के कारण भी साधारणजन शास्त्र-सभाओं में जाकर, स्वाध्याय का लाभ नहीं ले सकते।

किसी सुयोग से स्वाध्याय के समय की अनुकूलता भी हो तथा स्वास्थ्य भी ठीक हो, पर चारों अनुयोग के ज्ञाता विद्वान की प्राप्ति दुर्लभ है।

मङ्गल विद्यापीठ ने निर्णय किया कि ऐसा कोई सर्वजनहिताय उपक्रम प्रारम्भ किया जाए; जिसमें लघु वय से ही मुमुक्षुता को योग्य पोषण मिलता रहे। देश-विदेश के किसी भी कोने में बैठकर, कोई भी उपासक, समस्त विषयों का सांगोपांग अध्ययन कर सके और उसकी समय-समय पर परीक्षा भी होती रहे। परीक्षा के लिए लिखित या On-Line का भी विकल्प रहे। साथ-साथ समय-समय पर श्रोताओं की जिज्ञासानुसार, नियमित अथवा प्रासंगिक कक्षाओं का Video Conference द्वारा भी आयोजन हो।

मङ्गल विद्यापीठ का यह भी भाव है कि एक **'मङ्गल जिज्ञासा'** उपक्रम चले, जिसमें समय-समय पर श्रोताओं से प्रश्न पूछे जाएँ और उत्तरदाताओं को पुरस्कृत भी किया जाए। साथ ही एक **'मङ्गल समाधान'** उपक्रम चले, जिसमें श्रोताओं की जिज्ञासाओं का तत्काल समाधान मिलने का यह केन्द्रबिंदु बने, जिसमें किसी भी अनुयोग की शंकाओं का निराकरण, आगम तथा युक्ति से हमारी विद्वत् मंडली के सदस्यों द्वारा किया जाए। हम चाहते हैं कि ज्ञान के प्रचार-प्रसार के अभियान के इस यज्ञ में आप भी हमारे सहभागी बनें।

इन भागों को बनाने में हमने पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर आदि संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का सहयोग लिया है। हम उसके लिए सभी के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
	आत्म-कीर्तन	1
1	देव-स्तुति	2
2	पाप	5
3	कषाय	9
4	जैन का सामान्य सदाचार	13
5	संसार तथा मोक्ष	17
6	द्रव्य-व्यवस्था	21
7	शासननायक : भगवान महावीर	25
8	जिनवाणी स्तुति	29

आत्म-कीर्तन

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता दृष्टा आतम-राम ।।टेक ।।

मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहाँ राग वितान ।।1 ।।

मम स्वरूप है सिद्ध-समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आश-वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।2 ।।

सुख-दुख दाता कोई न आन, मोह राग-रुष दुख की खान।
निज को निज, पर को पर जान, फिर दुख का नहिं लेश निदान ।।3 ।।

जिन, शिव, ईश्वर, ब्रह्मा, राम, विष्णु, बुद्ध, हरि जिसके नाम।
राग, त्याग पहुँचूँ निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम ।।4 ।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो पर-कृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ।।5 ।।

— *श्री मनोहरलालजी वर्णी*

पाठ 1

देव-स्तुति

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, भविजन की अब पूरो आस।
ज्ञान भानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनास।

जीवों की हम करुणा पालें, झूठ वचन नहीं कहें कदा।
परधन कबहुँ न हरहूँ स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रखें सदा॥

तृष्णा-लोभ बढ़े न हमारा, तोष सुधा नित पिया करें।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा, तिस की सेवा किया करें॥

दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार।
मेल-मिलाप बढ़ावें हम सब, धर्मोन्नति का करें प्रसार॥

सुख-दुख में हम समता धारें, रहें अचल जिमि सदा अटल।
न्याय-मार्ग को लेश न त्यागें, वृद्धि करें निज आतमबल॥

अष्ट करम जो दुःख हेतु हैं, तिनके क्षय का करें उपाय।
नाम आपका जपें निरन्तर, विघ्न शोक सब ही टल जाय॥

आतम शुद्ध हमारा होवे, पाप मैल नहिं चढ़े कदा।
विद्या की हो उन्नति हममें, धर्म ज्ञान हूँ बढ़े सदा॥

हाथ जोड़कर शीश नवावें, तुमको भविजन खड़े-खड़े।
यह सब पूरो आस हमारी, चरण शरण में आन पड़े॥

देव-स्तुति का सारांश

यह स्तुति, सच्चे देवों की है। सच्चा देव उसे कहते हैं, जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो। वीतरागी वह है, जो राग-द्वेष से रहित हो और सर्वज्ञ वह है, जो लोकालोक के समस्त पदार्थों को एक साथ जानता हो। आत्महित का उपदेश देनेवाला होने से, वीतरागी-सर्वज्ञ, हितोपदेशी कहलाते हैं।

वीतराग भगवान से प्रार्थना करता हुआ भव्य जीव सबसे पहले यह कहता है कि मैं मिथ्यात्व का नाश करूँ और सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करूँ, क्योंकि मिथ्यात्व का नाश किए बिना, धर्म का आरम्भ ही नहीं होता है।

इसके बाद वह अपनी भावना व्यक्त करता हुआ कहता है कि मेरी प्रवृत्ति पाँचों पापों और कषायों में न जावे। मैं हिंसा न करूँ, झूठ न बोलूँ, चोरी न करूँ, कुशील सेवन न करूँ तथा लोभ के वशीभूत होकर, परिग्रह संग्रह न करूँ; सदा सन्तोष धारण किए रहूँ और मेरा जीवन, धर्म की सेवा में लगा रहे।

हम धर्म के नाम पर फैलनेवाली कुरीतियों, गृहीत मिथ्यात्वादि और सामाजिक कुरीतियों को दूर करके, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में सही परम्पराओं का निर्माण करें तथा परस्पर में धर्म-प्रेम रखें।

हम सुख में प्रसन्न होकर, फूल न जावें और दुःख को देखकर, घबड़ा न जावें; दोनों ही दशाओं में धैर्य से काम लेकर समताभाव रखें तथा न्यायमार्ग पर चलते हुए, निरन्तर आत्मबल में वृद्धि करते रहें।

आठों ही कर्म, दुःख के निमित्त हैं, कोई भी शुभाशुभ कर्म, सुख का कारण नहीं है; अतः हम उनके नाश का उपाय करते रहें। आपका स्मरण सदा रखें, जिससे सन्मार्ग में कोई विघ्न-बाधा न आवें।

हे भगवन! हम और कुछ भी नहीं चाहते हैं, हम तो मात्र यही चाहते हैं कि हमारा आत्मा, पवित्र हो जावे और उसे मिथ्यात्वादि पापोंरूपी मैल कभी भी मलिन न करे तथा लौकिक विद्या की उन्नति के साथ, हमारा धर्मज्ञान (तत्त्वज्ञान) निरन्तर बढ़ता रहे।

हम सभी भव्य जीव, हाथ जोड़कर खड़े हुए, आपको नमन कर रहे हैं, हम तो आपके चरणों की शरण में आ गए हैं, हमारी भावना अवश्य ही पूर्ण हो।

प्रश्न —

1. यह स्तुति किसकी है ? सच्चा देव किसे कहते हैं ?
2. पूरी स्तुति सुनाइए या लिखिए।
3. उक्त प्रार्थना का आशय अपने शब्दों में लिखिए।
4. निम्नांकित पंक्तियों का अर्थ लिखिए —
   - ‘ज्ञान भानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनास।’
   - ‘दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार॥’
   - ‘अष्ट करम जो दुःख हेतु हैं, तिनके क्षय का करें उपाय॥’

पाठ 2

पाप

जैनधर्म पतित-पावन है अर्थात् पतित (पापी) जीवों को पवित्र करता है। इसका मतलब यह नहीं समझना कि पापी कितने ही पाप करता जाए और धर्म उसे क्षमा कर दे। जब जीव, अरहन्त, सिद्ध, साधु तथा धर्म की शरण में आता है, तो सहज ही उसकी पापप्रवृत्ति समाप्त होती है और जैसे-जैसे वह पाप से हटता जाता है, वैसे-वैसे वह पवित्र होता जाता है।

पंच परमेष्ठी, पवित्र हैं; क्योंकि वे पाप से मुक्त हैं। पाप को छोड़ने के लिए पहले हम यह देखते हैं, कि पाप क्या है, कैसा है और हमें क्या करना चाहिए ?

जिससे जीव, दुःखी होता है, ऐसे बुरे कार्य को पाप कहते हैं। संक्षेप में, दुःख का कारण, बुरा कार्य ही पाप है। पाप से जीव के दोनों लोक, इहलोक तथा परलोक बिगड़ते हैं। पापी की सर्वत्र निन्दा, उपेक्षा तथा घृणा होती है। कानून भी उन्हें कारावास, फाँसी आदि सजाएँ देकर, उसका जीवन नरकतुल्य करता है। यहाँ तक कि पापी से घरवाले भी अपना नाता तोड़ देते हैं। पापियों के कोई मित्र भी नहीं रहते। इसलिए पाप से दूर ही रहना चाहिए।

अब, हम देखें कि वे बुरे कार्य कौन-कौन से हैं, जिनसे जीव का पतन होता है। वे मुख्यता से पाँच हैं - हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह।

हाँ, पापों में कोई बड़ा पाप हो तथा कोई छोटा पाप हो ऐसा नहीं होता। सभी बराबर के दोषपूर्ण हैं और छूटते भी सब एक साथ हैं।

किसी जीव को मारना, सताना, चिढ़ाना, कष्ट देना, उसका दिल दुखाना आदि हिंसा है। यह वचन और काय के स्तर की हिंसा है। इसलिए इसे द्रव्यहिंसा कहते हैं। ये बाह्यक्रियाएँ न होने पर भी, किसी को मारने आदि के भावमात्र से भी हिंसा होती है, यह भावहिंसा है। यह जैनधर्म का हिंसा सम्बन्धी सूक्ष्म कथन है; इसीलिए जैनधर्म सबसे महान है।

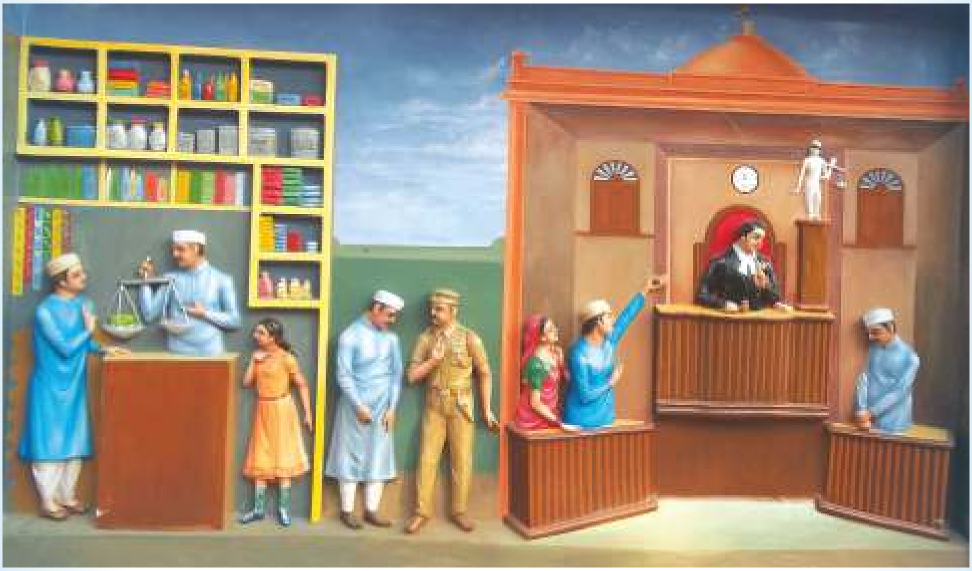

स्थिति की सही जानकारी न लेकर, जैसी स्थिति है अथवा बात है, वैसा ही कथन न करके, अन्यथा कथन करना, असत्य है, झूठ है, मृषा है। यह द्रव्य-असत्य है तथा ऐसा झूठ तो न बोल पाए, पर ऐसा ही विपरीत भाव रखना, यह भाव-असत्य है। शरीर को अपना मानकर कहना कि 'यह मेरा शरीर है' - यह भी झूठ ही है।

किसी और की पड़ी हुई, भूली हुई, रखी हुई अथवा गिरी हुई वस्तु को बिना उसकी आज्ञा लिए, उठा लेना या उठाकर किसी और को दे देना तो चोरी है ही, लेकिन परवस्तु के

ग्रहण करने के भावमात्र से भी चोरी होती है। शरीर को अपना मानना भी तो चोरी ही है। स्व-पर भेदविज्ञानी, शरीर को अपना नहीं मानते।

पराई माँ-बहिन को बुरी निगाह से देखना, उनसे छेड़छाड़ करना अथवा ऐसा भाव रखना, ये सब कुशील हैं। विषय-वासना का परिणाम, कुशील है।

अनाप-शनाप रुपया-पैसा संग्रह करना, परिग्रह है। आवश्यकता से अधिक धन-संचय भी पाप है क्योंकि इससे सभी लोगों में धन का समान बटवारा न होने से, समाज में गरीबी तथा दुःख फैलता है। हाँ, आवश्यकता से अधिक गाड़ी, मकान, धन होने का भाव रखनामात्र भी परिग्रह ही है।

अब, हम पाप की जड़ (कारण) को समझते हैं। घोर पाप की जड़, मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व अर्थात् उल्टी मान्यता। परवस्तु में दुःख तथा सुख की कल्पना ही मिथ्यात्व है। यही उल्टी मान्यता है। इसके वशीभूत होकर जीव, घोर पाप करता है; इसलिए सबसे बड़ा पाप मिथ्यात्व ही है, इसीलिए मिथ्यात्व को परिग्रह के भेदों में, सबसे पहले कहा है। परिग्रह, चौबीस होते हैं। चौदह तो अन्तरंगपरिग्रह हैं – मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा,

स्त्रीवेद, पुरुषवेद तथा नपुंसकवेद। धन, धान्य, खेत, मकान, पशु, पक्षी, नौकर, नौकरानी, आसन, वाहन, वस्त्र, बर्तन आदि पदार्थ, अंतरंग परिग्रह के विषय होने से दस प्रकार के बहिरंगपरिग्रह हैं।

इन पाँच पापों को जानकर, जैसे बने वैसे, उन्हें छोड़ना चाहिए।

शिक्षा–जैनधर्म में तो यह परम्परा है कि पहले बड़े पाप को हटाया जाए; इसीलिए पाँच पापों से बड़ा पाप, मिथ्यात्व जानकर, पहले मिथ्यात्व को छुड़ाया है।

प्रश्न —

1. पाप कितने होते हैं ? नाम गिनाइए।
2. जीव, घोर पाप क्यों करता है ?
3. क्या सत्य समझे बिना, सत्य बोला जा सकता है ? तर्कसंगत उत्तर दीजिए।
4. क्या कषायें परिग्रह हैं ? स्पष्ट कीजिए।
5. द्रव्यहिंसा और भावहिंसा किसे कहते हैं ?
6. पापों से बचने के लिये क्या करना चाहिए ?
7. सबसे बड़ा पाप कौन है और क्यों ?

कुपथ से बचने का उपाय

पाप करने के पहले हर प्राणी के अंतर से एक आवाज उठती है कि यह बुरा काम मत करो, इसलिए वह झिझकता है। किंतु जिसके कुसंस्कार प्रबल होते हैं, उसके सामने वह आत्मा की आवाज मर जाती है। यदि वह आत्मा की पहली आवाज पर चले तो कुमार्ग से बच सकता है। क्योंकि कुत्ते को खाने के लिए रोटी डाली जाए तो वह वहीं बैठकर खा लेता है और यदि वह चुराकर रोटी ले जाता है तो दूर जाकर कहीं एकांत में झाड़ी आदि में छिपकर खाता है। अत: एक अबोध प्राणी भी अच्छे–बुरे कर्म का निर्णय तो कर लेता है।

पाठ 3

कषाय

मङ्गलार्थियो, जरा विचार करो! यदि कोई आकर हमसे छेड़छाड़ करे, तो हमारे ऊपर क्या बीतती है? कोई हमारा हाथ मरोड़ दे, गर्दन मसल दे, तो हम कितना दुःख अनुभव करते हैं। यदि कोई गला दबाए, तब तो दम ही घुटने लगता है। यदि कोई कसकर पकड़े, तो हम उस पकड़ से-जकड़न से छूटने के लिए कितना प्रयास करते हैं?

वास्तव में शरीर तो हमारा पड़ोसी है; हमारा अपना स्वरूप नहीं है। मैं तो आत्मा हूँ। हमारा आत्मा भी अनादि काल से जकड़ रहा है, कोई उसे कस रहा है, आत्मा उससे तड़फ रहा है। आत्मा को कसनेवाली कोई रस्सी या हथियार नहीं है, वरन् हमारा विभाव है। यह विभाव, आत्मा का राग-द्वेषरूप विकारीभाव है। इस विभाव को अर्थात् राग-द्वेष को अथवा जो आत्मा को कसे, दुःख दे, उसे ही कषाय कहते हैं। यह कषाय, आत्मा के जानने-देखने के सच्चे स्वभाव का घात करती है।

ये कषायें चार हैं - क्रोध, मान, माया तथा लोभ।

सामान्यरूप से ये सभी कषायें, मिथ्यात्व के उदय में, तत्त्वज्ञान के अभाव में, जब परवस्तु सम्बन्धी इष्ट-अनिष्ट कल्पना होती है, तब उत्पन्न होती हैं और जब भेदविज्ञान (तत्त्वज्ञान) के बल से, वस्तु सम्बन्धी इष्ट -अनिष्ट कल्पना समाप्त होती है, तो कषायें भी नष्ट हो जाती हैं।

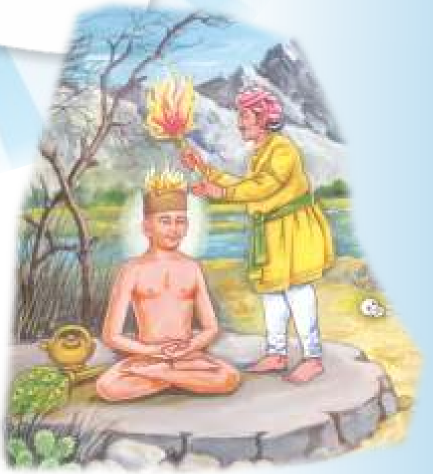

जब हम ऐसा मानते हैं कि किसी ने मेरा बुरा

किया, तब क्रोध उत्पन्न होता है। चिढ़ना, झुँझलाना, गुस्सा करना, क्रोध कहलाता है। जब हमें किसी के प्रति अनिष्ट-कल्पना खत्म हो जाती है अर्थात् हम ऐसा मानते हैं कि कोई भी मेरा बुरा करनेवाला नहीं है; क्योंकि मैं तो आत्मा हूँ, तो क्रोधकषाय स्वयं ही समाप्त हो जाती है।

क्रोध, धधकते अंगारों की तरह है, जो उसे उठाकर दूसरों पर फैंकना चाहेगा, वह स्वयं भी जलेगा ही। द्वीपायन मुनि ने इसी क्रोध के वश होकर, अपना संयम खोकर, दुर्गति प्राप्ति की।

जब हम ऐसा मानते हैं कि परवस्तु का मैं स्वामी हूँ, तो हम परवस्तु के संयोग से स्वयं को बड़ा-छोटा मानने लगते हैं, यही मानकषाय है। घमण्ड, गर्व, गुमान इसी मान के नाम हैं। परवस्तु के प्रति स्वामित्व छोड़ने से, मानकषाय का भी अन्त होता है। **मान के वशीभूत होकर ही अत्यन्त बलशाली अर्धचक्री रावण, नरक में गया।**

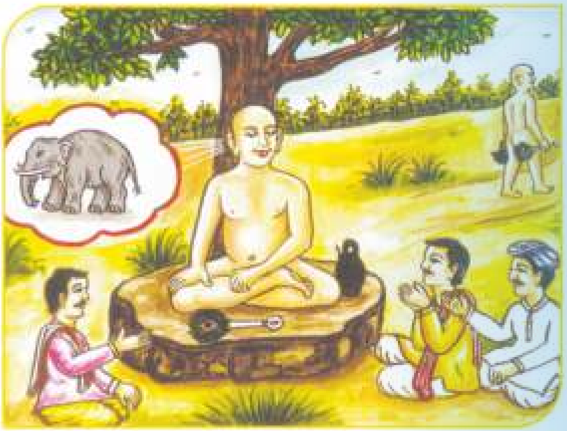

जब हम यह सोचते हैं कि छल-कपट से ही कार्य की सिद्धि होती है, तब मायाकषाय उत्पन्न होती है। मायाकषाय के कारण, मन में कुछ, वचन में और कुछ तथा काया में और कुछ, ऐसी वक्रता बनी रहती है। चालबाजी, ठगना इसी मायाचारी के नाम हैं। जब हमें यह

तत्त्वज्ञान हो जाता है कि किसी भी कार्य की सिद्धि, कर्मोदयानुसार ही होती है; हमारे प्रयास से नहीं, तो छल-कपट का भाव नष्ट हो जाता है। **मायाचारी के फल में ही तिर्यंचगति की प्राप्ति होती है। मायाचार के कारण ही श्री मृदुमति नामक मुनिराज हाथी की पर्याय को प्राप्त हुए।**

जब हम अपने आत्मा से सन्तुष्ट नहीं होते, तो परवस्तु के प्रति आकर्षण होता है और लोभकषाय उत्पन्न होती है। जब समस्त सुखों का कारण तथा भण्डार हमारा अपना आत्मा है, यह समझ में आने पर बाह्यवस्तु का आकर्षण मिट जाता है और लोभकषाय का भी नाश हो जाता है।

आसक्ति, आकांक्षा, गृद्धता भी लोभ के ही नाम हैं। **'लोभ, पाप कौ बाप बखानौ।' समस्त पापों की जड़, लोभकषाय है। इसी लोभकषाय के वशीभूत होकर, सुभौम चक्रवर्ती नरक में गए। महाभारत का युद्ध भी इसी लोभकषाय के कारण ही तो हुआ था।**

क्रोध और मान - ये दोनों द्वेषरूप कषायें हैं तथा माया और लोभ - ये दोनों रागरूप कषायें हैं। राग हो[1] अथवा द्वेष[2], दोनों दुःखरूप

1. जब हम किसी को भला जानकर, अपनाना चाहते हैं, तो वह राग कहलाता है। राग, यह इष्ट कल्पना है।
2. जब हम किसी को बुरा जानकर दूर करना चाहते हैं, तो वह द्वेष कहलाता है। द्वेष, यह अनिष्ट कल्पना है।

हैं क्योंकि वे परलक्ष्यी भाव हैं, विभाव हैं। ये दोनों, आत्मा को कसते हैं। आत्मा का धर्म तो वीतरागता है। आत्मा का स्वभाव तो जानना-देखनामात्र है।

शिक्षा - जिन जीवों को दुःखी नहीं होना हो, वे कषाय नहीं करें।

निष्कषायभाव की कषायभाव पर विजय

प्रश्न —

1. कषाय किसे कहते हैं ? कषाय को विभाव क्यों कहा ?
2. कषाय से क्या हानि है ?
3. क्या कषायें, आत्मा का स्वभाव हैं ?
4. कषायें कितनी होती हैं ? नाम बताइए।
5. कषायें क्यों उत्पन्न होती हैं ? वे कैसे मिटें ?
6. आत्मा का स्वभाव क्या है ?

पाठ 4

जैन का सामान्य सदाचार

जैनशासन में, लोक-व्यवहार का ज्ञान भी भरपूर दिया गया है। जैनधर्म में बताई गई, खान-पान की शुद्धि को आज के वैज्ञानिकयुग ने तथा स्वास्थ्य विशेषज्ञों ने भी प्रमाणित किया है। अहिंसक जीवनशैली के अनुरूप आहारचर्या कैसी होनी चाहिए, उसकी थोड़ी चर्चा हम इस पाठ में करेंगे। शुद्ध आहार से शरीर तो स्वस्थ रहता ही है, पर मानसिक विकार भी मिट जाता है क्योंकि 'जैसा खाओगे अन्न, वैसा होगा मन' तथा 'जैसा पिओगे पानी - वैसी होगी वाणी' कहावत सदियों से प्रचलित है।

इस पाठ में हम बाजार की वस्तु के त्याग सम्बन्धी विचार करते हैं।

अभी दिल्ली में एक घटना हुई। निर्मला, जो कि चौथी में पढ़ती है, स्कूल के सभी बच्चों के साथ टिफिन खा रही थी। अपनी सहेलियों के आग्रह पर, उसने दूसरों के टिफिन का खाना भी खाया। बाद में उसे वे ही सहेलियाँ यह कहकर चिढ़ाने लगीं कि इस खाने में तो अण्डा डाला गया है; आपने कैसे खा लिया?

मङ्गलार्थी बालको! हमें भी शिक्षा लेनी चाहिए कि हम अपने टिफिन का ही भोजन तथा अपनी ही बोतल का पानी पिएँगे।

आज टी.वी. में, अखबारों में, सब जगह यह ज्ञान कराया जा रहा है कि होटल का तथा बाहर की खाद्य-पेय सामग्री का प्रयोग, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

आज लोभ के कारण व्यापारियों द्वारा धनिया पाउडर में गधे की लीद; दन्तमंजन में, गेरुआ मिट्टी; काली मिर्च पाउडर में, पपीता के पीसे हुए बीज डाले

जा रहे हैं। टाटरी या नींबू का सत तो बिल्कुल मांसाहारी चीज़ है। इसमें नींबू की एक बूँद भी नहीं होती। टूथपेस्ट में हड्डी का प्रयोग होता है। कई टूथपेस्ट और टूथ पाउडर में हड्डियों की राख (Calcium Carbonate) और कुछ में

ग्लिसरीन होती है, जो पशुजन्य भी हो सकती है।

हड्डी को उबालकर, उसमें से मीठा पदार्थ निकालकर, उससे सॅकरीन (Saccharine) बनती है। चॉकलेट, बिस्किट, टॉफी आदि को मीठा करने के लिए, इसी सॅकरीन को शक्कर के रूप में डाला जाता है। बिस्किट में घी के बजाय चर्बी का प्रयोग होता है।

जितने भी बेकरी पदार्थ (Bakery Products) है, जैसे - ब्रेड, खारी, टोस्ट आदि - ये सब मैदे से बनते हैं। बाजार की मैदा स्वयं ही जीवों की भण्डार है तथा स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल है। यह पेट में जाकर आँतों में चिपक जाती है, इसीलिए इसका पाचन भी ढंग से नहीं होता। बेकरी पदार्थ तो Yeast डालकर सड़ा-गलाकर

बनाए जाते हैं, ऐसी जानकारी अभी मिल रही है। यही हाल पानीपूरी आदि का है। अशुद्ध व गन्दे पानी से, मुरमुरे आदि बनाए जा रहे हैं।

समुद्री नमक भी जैन के लिए खाने योग्य नहीं है। चाय, काफी में भी जीवहिंसा के साथ-साथ, स्वास्थ्य का भी घात होता है। चाय की हरी पत्तियों को तोड़कर, तत्काल ही सूखाने के लिए गर्म हीटर लगे मशीन में डाल देते हैं। उन पत्तियों पर पलनेवाले दो-तीन इन्द्रिय त्रसजीव, उन मशीनों में जलकर मर जाते हैं। इस चाय में कैफीन (Caffeine) जैसी नशीली चीजें भी हैं जो स्वास्थ्य का घात करती हैं। रिफाइन्ड तेल भी अशुद्ध होने के साथ-साथ स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल है।

हिंसक साबुन-शैम्पू का त्याग ही करना चाहिए। एक टोमेटो सॉस के कारखाने में छापा मारने के बाद देखा तो कितने ही टन सड़े हुए टमाटरों का सॉस बनाया जा रहा था।

पेप्सी आदि शीतल पेय (cold drinks) के नाम पर, हम कई एसिड (Phosphoric आदि), घातक गैस (Co_2 आदि) तथा जहरीले कीटनाशकों (Lindane, D.D.T. आदि) से अपना धर्म-कर्म मिटा रहे हैं। भारत के एक प्रसिद्ध योगी संत ने इन ठण्डे पेयों को टॉयलेट क्लीनर का नाम देकर, ठण्डे के नाम पर परोसे जा रहे इन घातक पेयों को छोड़ देने की सलाह दी है।

अब प्रश्न है, कि हम क्या करें ?

हम घर पर ही बनी शुद्ध वस्तुओं का प्रयोग करें। नमकीन आदि घर पर ही बनें। नमक के रूप में सैंधानमक का ही प्रयोग करें। ठण्डे पेय के बदले में नींबू की शिकंजी का प्रयोग करें। चाय के बदले में, उकाली का प्रयोग करें। होटल अथवा रेस्टोरेन्ट में जाकर, अथवा वहाँ से घर पर लाकर, खाने-पीने की इस पाश्चात्य पद्धति का, हमें त्याग करना चाहिए।

पिज्जा में है गोमांस!
पैकेट पर लिखा है
फिर भी खाने वाले दीवाने

क्या आप पिज्जा खाने के शौकीन है और आपकी पिज्जा खाने की जिद है तो जरा संभलकर इसका चयन करें, क्योंकि इसमें गोमांस की परत होती है। पैकेट पर इस बारे में साफ-साफ लिखा है।

इतना ही नहीं जिस पैकेट में यह खाद्य सामग्री है उस पर उत्पाद के वेज या नानवेज होने की पुष्टि करने वाला लोगो तक नहीं है। इन दिनों बच्चे जाने-अनजाने गोमांस का सेवन कर रहे हैं। यह गोमांस उन्हें पिज्जा के मम्मी पैक के जरिए दिया जा रहा है। 15 ग्राम के छोटे से रंग बिरंगे पैकेट में बंद यह पिज्जा हर गली व चौराहे पर बनी दुकानों पर धड़ल्ले से बेचा जा रहा है। इस पैकेट में पाँच स्लाईस होते हैं जिसमें एक एक परत गोमांस की लगी होती है।

इस बारे में कंपनी ने अपने उत्पाद पर स्पष्ट शब्दों में लिखा है। उत्पाद को तैयार करने के लिए प्रयोग की गई सामग्री में इसका उल्लेख है। रेपर पर अंग्रेजी में बीफ जिलेटिन शब्द भी लिखा हुआ है। इसका अर्थ है, गोमांस की परत। यह संदेश बेहद महीन शब्दों में छपा है। चूंकि ज्यादातर बच्चे न तो अंग्रेजी जानते हैं और न ही खाने-पीने की चीजों में सावधानी बरतते हैं।

ऐसे में बच्चे अनजाने में ही गोमांस का सेवन कर रहे हैं। इसकी बिक्री से कंपनी मालामाल हो रही है। नागरिकों द्वारा प्रशासन से इस बारे में उचित कार्यवाही करने की मांग की गई है।

मङ्गलार्थियो! ध्यान रखना कि प्रत्येक जीव, जीना चाहता है; कोई मरना नहीं चाहता। हम निर्दय होकर दूसरे जीवों का घात नहीं करें। हम खाने के लिए नहीं जीते, बल्कि जीने के लिए मजबूरी में खाते हैं। खाना-पीना तो चेतनमयी आत्मा का स्वरूप ही नहीं है। ऐसी भावना से अल्प काल में भगवान जैसी अवस्था प्रगट होती है, जहाँ भूख-प्यास का काम ही नहीं है।

पाठ 5

संसार तथा मोक्ष

मङ्गलार्थी बच्चो! जीव, अनादि काल से दर-दर की ठोकरें खाता आ रहा है। कभी इस गति में, तो कभी उस गति में। गति कोई भी हो, कम दुःखरूप हो अथवा ज्यादा दुःखरूप हो, है तो दुःखरूप ही, क्योंकि संसार का स्वरूप ही दुःखरूप है। सुख तो एकमात्र मोक्ष में है। वहाँ कोई भ्रमण (घूमना) नहीं होता। वह शाश्वत गति है। इसे पंचम गति भी कहते हैं।

चतुर्गति भ्रमण का मूलकारण मिथ्यात्व है, वस्तुस्वरूप की विपरीत कल्पना है। परद्रव्यों में सुख-दुःख और पर में अपनत्व की कल्पना ही विपरीत कल्पना है। यही मिथ्यात्व, शुभ तथा अशुभभाव को जन्म देता है। शुभभाव से शुभगति मिलती है तथा अशुभभाव से अशुभगति मिलती है। मनुष्यगति तथा देवगति, शुभगति मानी जाती हैं क्योंकि यहाँ कम दुःख है और तिर्यंचगति तथा नरकगति अशुभगति मानी जाती हैं क्योंकि वहाँ ज्यादा दुःख है।

जो जीव, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करके, अष्ट कर्मों को नष्ट करके, सिद्ध होते हैं, उन्हें मुक्त कहते हैं। इन मुक्त जीवों के शरीर भी नहीं होता; वे सदा मोक्षगति में परम सुखी रहते हैं। वे फिर कभी संसार में अवतार धारण नहीं करते।

मोक्ष की प्राप्ति का साक्षात् उपायरूप संयम-पालन, मनुष्यगति में ही होता है, इसीलिए इस मनुष्यगति को अति दुर्लभ कहते हैं।

जीव की अवस्था विशेष को गति कहते हैं। जब कोई जीव, कहीं से मरकर मनुष्यशरीर धारण करता है अर्थात् मनुष्यगति में जन्म लेता है, तो उसे मनुष्य कहते हैं। तुम और हम सभी मनुष्य हैं। मनुष्यों में विशेष विवेक होता है। धर्म-कर्म

सम्बन्धी विशेषज्ञान होता है। **कम से कम आरम्भ (हिंसा का परिणाम) तथा कम से कम परिग्रह में काम चलाने के भाव से मनुष्य आयु मिलती है। स्वभाव की सरलता, वक्रतारहित परिणामों के फल में, मनुष्य आयु* मिलती है।** यह गति ऐसा जंक्शन है, जहाँ से अपने परिणाम के अनुसार, चारों गतियों में से, किसी भी गति में जा सकते हैं और पुरुषार्थ की उग्रता से हम पंचम गति सिद्धावस्था की भी प्राप्ति कर सकते हैं। सिद्धों के अलावा चारों परमेष्ठी भी हमारी गति के हैं।

जब कोई जीव, कहीं से आकर, नारकशरीर धारण करता है अर्थात् नरकगति में जन्म लेता है, तो उसे नारकी कहते हैं। वहाँ वे निरन्तर दु:ख ही भोगते हैं, मानो उनका जन्म ही दु:ख भोगने के लिए हुआ हो। नरक में दूसरे नारकी उसके शरीर को बहुत बार काटते हैं, जलाते हैं।

* गति, जीव का परिणाम है और आयु से जीव का शरीर के साथ एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध बना रहता है।

वहाँ मारकाट मची रहती है। नारकी आपस में लड़ते–झगड़ते रहते हैं। उन्हें न कभी खाने को अन्न मिलता है, न कभी पीने को पानी।

नरक में दु:ख ही दु:ख है; अत: बच्चो! पाप कभी नहीं करना चाहिए। जो हठी हो, असन्तोषी वृत्तिवाला हो, झगड़ालू हो, उसे नरकगति मिलती है। **बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह के भाव से, नरक आयु मिलती है।**

जब कोई जीव कहीं से मरकर, देवशरीर को प्राप्त करता है अर्थात् देवगति में जाता है, उसे देव कहते हैं। पुण्य करनेवाला जीव, देव होकर स्वर्ग में जाता है। स्वर्ग में सुख है – ऐसा कहा जाता है।

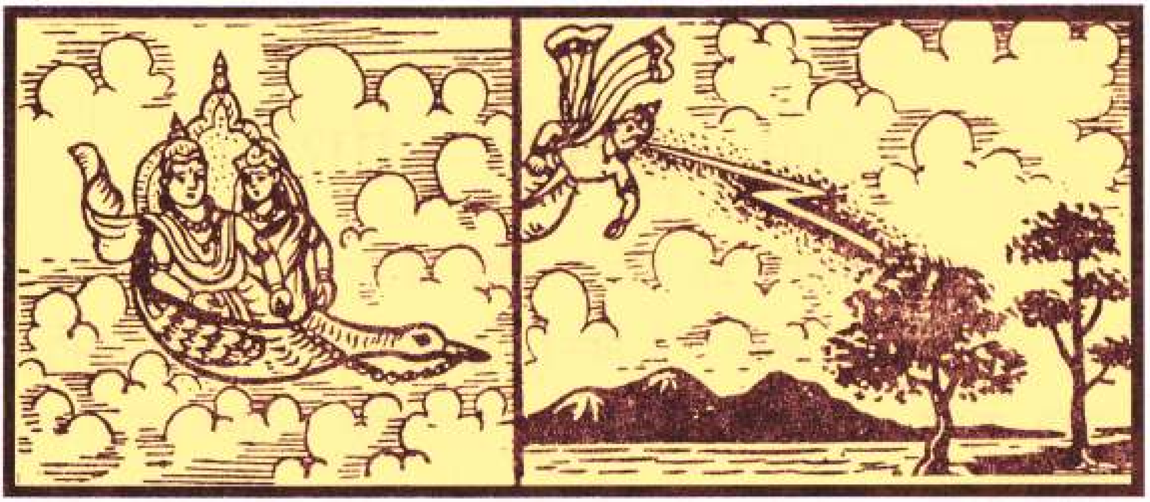

मङ्गलार्थियो! एक बात ध्यान में रखना कि यदि आत्मज्ञान नहीं है, तो स्वर्ग में भी सच्चा सुख नहीं मिल सकता। स्वर्ग में भी वही जीव सुखी है, जिसने आत्मा को पहचाना है। आत्मज्ञान के बिना तो स्वर्ग का देव भी दु:खी है। स्वर्ग के द्वारा, मोक्ष में नहीं जा सकते, किन्तु मनुष्य होकर, सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र के द्वारा ही, हम मोक्ष में जा सकते हैं और फिर देव भी, आयु समाप्त करके, महादु:खरूप गतियों में चले जाते हैं; अत: देवगति शाश्वत भी नहीं है।

संयम के साथ रहनेवाला शुभभावरूप रागांश और असंयमांश; मन्द

कषायरूप भाव तथा अज्ञानपूर्वक किए गए तपश्चरण के भाव, देवायु के बंध के कारण हैं। अत्यन्त मन्द परिणाम से यह देवगति मिलती है, पर ये भाव भी **अपराध** ही हैं; इसीलिए संसार का अभाव, देवों के भी नहीं है।

एकमात्र वीतरागभाव ही निरपराधदशा है और उसी के फलस्वरूप सिद्धावस्था मिलती है।

जब कोई जीव, अपने शरीर को छोड़कर, तिर्यंच शरीर धारण करता है अर्थात् तिर्यंचगति में जाता है, उसे तिर्यंच कहते हैं। तिर्यंचों के दुःख तो हम रात-दिन देखते हैं। कत्लखाने इन्हीं तिर्यंचों की हत्या के लिए खोले जाते हैं। जरा विचार करो! हमारा एक बाल भी खींचा जाए तो कितनी पीड़ा होती है ? यहाँ तो रात-दिन बोझा ढ़ोना आदि कराए जाते हैं, भूख-प्यास की बाधाएँ भी यहाँ अधिक हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, कीड़े-मकोड़े, हाथी, घोड़े, कबूतर, मोर आदि पशु-पक्षी सभी तिर्यंच ही हैं।

तिरछे परिणाम से अर्थात् मायाचारी, छल-कपट के परिणाम से तिर्यंचायु मिलती है। ये चारों गतियाँ, **चार प्रकार की श्रेणियोंवाली जेल ही हैं।**

शिक्षा - चारों गतियाँ क्षणिक, परिभ्रमणशील तथा हीनाधिकरूप से दुःखरूप ही हैं। इसके विपरीत मुक्तावस्था (पंचम गति) ही ध्रुव, अचल तथा अनुपम है। तिर्यंच, विवेकहीन हैं; नारकी, अत्यन्त संक्लेशता भोगते हैं; देव, विषयासक्त हैं, एक मनुष्यपर्याय में ही हम, धर्म कर सकते हैं; अतः अब हमें धर्म का पुरुषार्थ करना चाहिए।

पाठ 6

द्रव्य-व्यवस्था

छात्र – गुरुजी, अम्मा कहती थी कि जो हमें दिखाई देता है, वह तो सब पुद्‌गल है। यह पुद्‌गल क्या होता है ?

अध्यापक – ठीक तो है। हमें आँखों से तो सिर्फ वर्ण (रंग) ही दिखाई देता है और वह, मात्र पुद्‌गल में ही पाया जाता है।

जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण पाया जाए, उसे पुद्‌गल कहते हैं। पुद्‌गल, अजीवद्रव्य है।

छात्र – द्रव्य किसे कहते हैं ? वे कितने प्रकार के हैं ?

अध्यापक – गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं। वे छह प्रकार के हैं – जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

छात्र – तो क्या द्रव्यों में अजीव नहीं हैं ?

अध्यापक – जीव को छोड़कर, बाकी सब द्रव्य, अजीव ही तो हैं। जिनमें ज्ञान पाया जाए, वे ही जीव हैं; बाकी सब अजीव।

छात्र – जब द्रव्य, छह प्रकार के हैं तो हमें दिखाई केवल पुद्‌गल ही क्यों देता है ?

अध्यापक – क्योंकि इन्द्रियाँ रूप, रस आदि को ही जानती हैं और आत्मा आदि वस्तुएँ अरूपी हैं; अतः इन्द्रियाँ उनके ज्ञान में निमित्त (कारण) नहीं हैं।

छात्र – .... पूजा-पाठ को धर्मद्रव्य कहते होंगे और हिंसादि को अधर्मद्रव्य।

अध्यापक – नहीं भाई! वे धर्म और अधर्म अलग हैं; ये धर्म और अधर्म तो द्रव्यों के नाम हैं, जो कि सारे लोक में तिल में तेल के समान फैले हुए हैं।

छात्र – इनकी क्या परिभाषा है?

अध्यापक – जिस प्रकार जल, मछली के चलने में निमित्त है; उसी प्रकार स्वयं चलते हुए जीवों और पुद्गलों को चलने में जो निमित्त हो, वही

धर्मद्रव्य है तथा जैसे – वृक्ष की छाया, पथिकों को ठहरने में निमित्त होती है; उसी प्रकार गमनपूर्वक ठहरनेवाले जीवों और पुद्गलों को, ठहरने में जो निमित्त हो, वही अधर्मद्रव्य है।

छात्र – जब धर्मद्रव्य चलाएगा और अधर्मद्रव्य ठहराएगा, तो जीवों को बड़ी परेशानी होगी?

अध्यापक – वे कोई चलाते या ठहराते थोड़े ही हैं। जब जीव और पुद्गल, स्वयं चलें या ठहरें, तो मात्र निमित्त होते हैं।

छात्र – आकाश तो नीला-नीला साफ दिखाई देता ही है, उसे क्या समझना?

अध्यापक – नहीं, अभी तुम्हें बताया था कि नीलापन-पीलापन तो पुद्गल की पर्याय

है। आकाश तो अरूपी है, उसमें कोई रंग नहीं होता। जो सब द्रव्यों के रहने में निमित्त हो, वही आकाश है।

छात्र – यह आकाश ऊपर है न ?

अध्यापक – यह तो सब जगह है, ऊपर-नीचे, अगल में, बगल में; दुनियाँ की ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ आकाश न हो। सब द्रव्य, आकाश में ही रहते हैं।

छात्र – काल तो समय को ही कहते हैं या कुछ और बात है ?

अध्यापक – काल का दूसरा नाम समय भी है किन्तु काल, जीव, पुद्‌गल की तरह एक द्रव्य भी है। उसमें जो प्रतिसमय अवस्था होती है, उसका नाम समय है। यह कालद्रव्य, जगत के समस्त पदार्थों के परिणमन में निमित्तमात्र होता है।

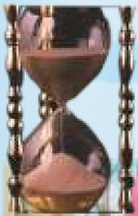

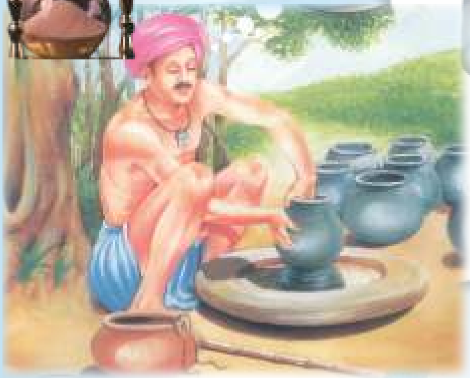

छात्र – अच्छा तो ये द्रव्य हैं कुल कितने ?

अध्यापक – धर्म, अधर्म और आकाश तो एक-एक ही हैं, पर कालद्रव्य असंख्य हैं तथा जीवद्रव्य तो अनन्त हैं एवं पुद्‌गल, जीवों से भी अनन्त गुणे हैं अर्थात् अनन्तानन्त हैं।

छात्र – इन द्रव्यों के अलावा और कुछ नहीं है दुनिया में ?

अध्यापक – इनके अलावा कोई दुनियाँ ही नहीं है। छह द्रव्यों के समूह को विश्व कहते हैं और विश्व को ही दुनियाँ कहते हैं।

छात्र – तो इस विश्व को बनाया किसने ?

अध्यापक – यह तो अनादि-अनन्त स्वनिर्मित है, इसे बनानेवाला कोई नहीं है।

छात्र – और भगवान कौन है ?

अध्यापक – भगवान, दुनियाँ को जाननेवाले हैं; बनानेवाले नहीं। जो तीन लोक और तीन काल के समस्त पदार्थों को एक साथ जाने, वही भगवान है।

छात्र – आखिर दुनियाँ में जो कार्य होते हैं, उनका कर्ता कोई तो होगा ?

अध्यापक – प्रत्येक द्रव्य, अपनी-अपनी पर्याय (कार्य) का कर्ता है। कोई किसी दूसरे द्रव्य का कर्ता नहीं है, ऐसी अनन्त स्वतन्त्रता, द्रव्यों के स्वभाव में पड़ी हुई है। उसे जो पहिचान लेता है, वही आगे चलकर, भगवान बनता है।

शिक्षा – वस्तु स्वातन्त्र्य की अटल मर्यादा में रहनेवाला भव्य जीव ही परवस्तु सम्बन्धी एकत्व, ममत्व, कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व के भार तथा क्लेश से मुक्त होता है।

प्रश्न –

1. द्रव्य किसे कहते हैं ? वे कितने प्रकार के होते हैं ? नाम गिनाइए।
2. विश्व किसे कहते हैं, इसे बनानेवाला कौन है ? भगवान क्या करते हैं ?
3. प्रत्येक द्रव्य की अलग-अलग संख्या लिखें।
4. परिभाषा लिखिए—

   धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य।
5. इन्द्रियों की पकड़ में आनेवाले द्रव्य को समझाइए।
6. आत्मा का स्वभाव क्या है ? वह इन्द्रियों से क्यों नहीं जाना जा सकता ?
7. अजीव और अरूपीद्रव्यों को गिनाइए।

पाठ 7

शासननायक : भगवान महावीर

मङ्गलार्थियो ! हमने देखा था, कि मोक्षमार्ग अखण्डितरूप से चलता रहे, इसके लिए विशिष्ट क्षेत्रों में तथा विशिष्ट कालों में भव्यों के महापुण्योदय से कुछ महापुरुष जन्म लेते हैं। वे महापुरुष, प्रत्येक उत्सर्पिणी –अवसर्पिणी काल में 24 होते हैं।

इस वर्तमान तीर्थ परम्परा में अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर हुए। आज उन्हीं का शासन चल रहा है। उनका जीवन समझकर, हम भी उनके समान महान बनेंगे।

पुरुरवा नाम का एक भील था। शिकार करना, उसका पेशा था। एक दिन मुनिराज को हिरण समझकर, उसने निशाना साधा। अचानक उसकी पत्नी ने उसे रोक दिया। पास जाकर उन्होंने देखा तो शर्म से नतमस्तक हो गया। वीतरागी सन्त, शत्रु को भी सहज ही अपना बना लेते हैं। धर्म के परिणाम और मुनिराज के उपदेश से उस भील ने भी कौए के मांस का त्याग किया और अत्यन्त विपत्ति के समय में भी, इस व्रत का पालन किया। मरण को पास देखकर, समस्त आहार–पानी का त्याग किया। इसके फल में वह स्वर्ग में देव बना।

अनेक भवों के बाद, वही भील, महावीर का जीव, सिंह बना। एक समय वह हिरण का भक्षण कर रहा था, तभी वहाँ पर दो मुनिराज आये। उनका उपदेश हुआ। (महावीरस्वामी के जीव) शेर ने सम्यग्दर्शन प्राप्त करके, व्रतों को भी अंगीकार किया।

ऐसे ही परिभ्रमण करते हुए, शेर से लेकर आगे दसवीं पर्याय में वे 599 ई. पू. (2018 सन् से 2619 वर्ष पूर्व) में बिहार प्रान्त के कुण्डलपुरनगर के **राजा सिद्धार्थ** के घर में जन्मे। वे नाथवंशीय क्षत्रिय राजकुमार थे। उनकी माँ का नाम **त्रिशला** था। **महावीर का जन्म, चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन हुआ था।**

महावीर सचमुच महावीर थे। बचपन में एक बार वे अन्य बालकों के साथ खेल रहे थे। इतने में कहीं से अचानक एक सर्प आ गया। अन्य तो सभी डरकर भाग गये। महावीर ने उसे अपने वश में कर लिया। एक दिन ऐसे ही पागल हाथी को भी

वश में किया। एक बार दो मुनिराज कुछ जिज्ञासाओं को लिए वहाँ से गुजर रहे थे। जैसे ही उनकी दृष्टि महावीर पर पड़ी, वैसे ही उनकी शंकाएँ दूर हो गईं।

महावीर ने गृहस्थजीवन में शादी के बन्धन में न फँसते हुए, तीस वर्ष की यौवनावस्था में स्वयं ही दिगम्बर दीक्षा ले ली। उन्हें बारह वर्ष की मौन साधना करते

हुए, अपने उम्र के ब्यालीसवें वर्ष में केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। **फिर लगभग तीस वर्ष तक, भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते हुए, लगभग बहत्तर वर्ष की आयु में, कार्तिक कृष्णा अमावस्या के ब्रह्ममुहूर्त में झारखण्ड में स्थित पावापुरी से निर्वाण की प्राप्ति की।** इसी दिन को दीपावली मनाई जाती है क्योंकि इसी दिन शाम को उनके प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। इस दिन को हम वीर निर्वाण संवत्-प्रारंभ के रूप में मानते हैं। भगवान महावीर के पाँचों कल्याणक, देवों ने आकर मनाए थे। भगवान महावीर को पाँच नामों से जाना जाता है - वीर, अतिवीर, वर्धमान, सन्मति तथा महावीर।

एक जनवरी को नववर्ष मनाना तो, अन्य मतों की परिपाटी है। वीर निर्वाण संवत् सबसे प्राचीन है। इससे जैनधर्म की प्राचीनता की भी सिद्धि होती है।

हमने देखा कि कैसे पशु में परमेश्वर, सिंह में सिद्ध, भील में भगवान बनने की शक्ति विद्यमान होती है। हम भी अपने आत्मा को जानें तो हम भी भगवान बन सकते हैं।

महावीर भगवान की कुछ शिक्षाएँ इस प्रकार हैं :-

1. सभी आत्माएँ बराबर हैं, कोई छोटा-बड़ा नहीं है।
2. भगवान कोई अलग से नहीं होते। जो जीव, पुरुषार्थ करे, वही भगवान बन सकता है।
3. भगवान, जगत की किसी भी वस्तु के कुछ भी कर्ता-हर्ता नहीं हैं, मात्र जानते ही हैं।
4. हमारे आत्मा का स्वभाव भी जानना-देखना है, कषाय आदि करना नहीं है।
5. कभी किसी का दिल दुखाने का भाव मत करो।
6. झूठ बोलना और झूठ बोलने का भाव करना, पाप है।
7. चोरी करना और चोरी करने का भाव करना, बुरा काम है।
8. संयम से रहो, क्रोध से दूर रहो और अभिमानी न बनो।
9. छल-कपट करना और भावों में कुटिलता रखना, बहुत बुरी बात है।
10. लोभी व्यक्ति सदा दुःखी रहता है।
11. हम अपनी ही गलती से दुःखी हैं और अपनी भूल सुधार कर, सुखी हो सकते हैं।

प्रश्न—

1. भगवान महावीर का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. उनकी क्या शिक्षाएँ थीं ?
3. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो—

   दीपावली, महावीर-जयन्ती, पावापुर।

पाठ ४

जिनवाणी स्तुति

जिस प्रकार दर्पण में देखकर चेहरे का दाग दूर करने का भाव होता है...

सवैया— मिथ्यातम नाशवे को, ज्ञान के प्रकाशवे को।
आपा-पर भासवे को, भानु सी बखानी है॥
छहों द्रव्य जानवे को, बन्ध विधि भानवे को।
स्व-पर पिछानवे को, परम प्रमानी है॥
अनुभव बतायवे को, जीव के जतायवे को।
काहू न सतायवे को, भव्य उर आनी है॥
जहाँ तहाँ तारवे को, पार के उतारवे को।
सुख विस्तारवे को, ये ही जिनवाणी है॥

....उसी प्रकार जिनवाणी को समझकर विकारी भाव दूर हो जाते हैं ?

दोहा— हे जिनवाणी भारती, तोहि जपों दिन रैन।
जो तेरी शरणा गहे, सो पावे सुख चैन॥
जा वाणी के ज्ञान तैं, सूझे लोकालोक।
सो वाणी मस्तक नवों, सदा देत हूँ ढोक॥

जिनवाणी स्तुति का अर्थ

हे जिनवाणीरूपी सरस्वती ! तुम मिथ्यात्वरूपी अन्धकार का नाश करने के लिए तथा आत्मा और परपदार्थों का सही ज्ञान कराने के लिए, सूर्य के समान हो।

छहों द्रव्यों का स्वरूप जानने में, कर्मों की बन्ध-पद्धति का ज्ञान कराने में, निज और पर की सच्ची पहिचान कराने में, तुम्हारी प्रामाणिकता असंदिग्ध है।

हे जिनवाणी माता! भव्य जीवों ने तुमको अपने हृदय में धारण कर रखा है

क्योंकि तुम आत्मानुभव करने का, आत्मा की प्रतीति करने का तथा किसी को दुःख न हो, ऐसा मार्ग बताने में समर्थ हो।

एकमात्र जिनवाणी ही संसार से पार उतारने में समर्थ हैं एवं सच्चे सुख को पाने का रास्ता बतानेवाली हैं।

हे जिनवाणीरूपी सरस्वती! मैं तेरी ही आराधना दिन-रात करता हूँ, क्योंकि जो व्यक्ति तेरी शरण में जाता है, वही सच्चा अतीन्द्रिय आनन्द पाता है।

जिस वीतरागवाणी का ज्ञान हो जाने पर, सारी दुनिया का सही ज्ञान हो जाता है, उस वाणी को मैं मस्तक नवाकर, सदा नमन करता हूँ।

प्रश्न —

1. जिनवाणी की स्तुति लिखिए।
2. स्तुति में जो भाव प्रकट किये हैं, उन्हें अपनी भाषा में लिखिए।
3. जिनवाणी किसे कहते हैं ?
4. जिनवाणी की आराधना से क्या लाभ है ?

तीर्थधाम चिदायतन

निर्माणाधीन तीर्थधाम चिदायतन के विशाल संकुल में स्थापित,
श्री शान्तिनाथ अस्थायी जिनालय के दर्शन हेतु अवश्य पधारें।

पंजीकृत कार्यालय :
श्री शान्तिनाथ-अकम्पन-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट,
'विमलांचल', हरीनगर, अलीगढ़-202001 (उत्तरप्रदेश) भारत।
Ph: 0571-2410010 / 11 / 12
E-mail: info@mangalayatan.com | www.mangalayatan.com

निर्माण-कार्यालय एवं स्वागत कक्ष :
तीर्थधाम चिदायतन
हस्तिनापुर, मेरठ-250404 (उत्तरप्रदेश) भारत।
Ph: +91 9412749670 E-mail: info@chidayatan.com | www.chidayatan.com

निर्माणस्थल :
तीर्थधाम चिदायतन
दूसरी नसियाँजी से आगे,
हस्तिनापुर, मेरठ-250404 (उत्तरप्रदेश) भारत।
(सम्पर्क : +91 9837079003, श्री मुकेशचन्द जैन, मेरठ)

भारत में उत्तरप्रदेश प्रांत की हृदयस्थली अलीगढ़ में निर्मित २१ वीं शती का
विशुद्ध जिनायतन संकुल एवं समाजसेवा का उत्कृष्ट संस्थान

तीर्थधाम मङ्गलायतन

प्रमुख दर्शनीय स्थल:

- कृत्रिम कैलाशपर्वत पर भगवान आदिनाथ मन्दिर एवं चौबीस तीर्थंकरों की निर्वाणस्थलियां-
- कैलाशपर्वत, सम्मेदशिखर, गिरनारगिर, चम्पापुर, पावापुरी एवं सोनागिरी व स्वर्णपुरी सोनगढ़ की विधिपूर्वक स्थापनाओं के दर्शन
- भगवान महावीर मन्दिर
- भगवान बाहुबली मन्दिर
- पंडित दौलतराम जिनवाणी मन्दिर एवं जिनवाणी संरक्षण केंद्र
- आचार्य समन्तभद्र आत्मचिंतन केंद्र
- धन्य मुनिदशा
- आचार्य कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप एवं शोध संस्थान
- भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन

मङ्गल प्रकल्प:

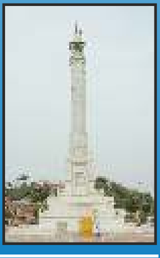

email : info@mangalayatan.com
website: www.mangalayatan.com

मूल्य 25/-